श्रमण संस्कृति का व्यापक दृष्टिकोण

□ बाल ब्रह्मचारिणी महासती उज्ज्वलकुमारी जी की सुशिष्या

—डॉ० साध्वी दिव्यप्रभा (एम. ए. पी-एच. डी.)

श्रमण एक शाब्दिक अर्थ

श्रमण संस्कृति का मूलाधार स्वयं श्रमण शब्द ही है। प्राकृत में यह शब्द 'समण' के रूप में मिलता है। परम्परा से रूपान्तर होते हुए यह शब्द तीन स्वरूप में उपलब्ध है—१. श्रमण—२. समन—३. शमन।

(१) **श्रमण किसे कहते हैं**—श्रमण शब्द श्रम धातु से बना है इसका अर्थ है श्रम करना। अर्थात् जो संयम में श्रम करे उसे श्रमण कहते हैं। श्रमण अपना विकास अपने ही परिश्रम से करता है। वह अन्तरंग उपयोग के साथ, विषय-वासना से पर होकर, यश, मान, सम्मान, प्रतिष्ठा की आंतरिक इच्छा से शून्य, मनसा, वाचा, कर्मणा से निश्चल, निष्कंप, एकाग्र बनकर, तप, त्याग, वैराग्य भाव में अनुरक्त होकर, उसी में चितन-मनन, निदिध्यासन करते हुए केवल निजात्मा को कर्ममल से विशुद्ध बनने का सतत श्रम करता है। अतः उस आत्म तत्त्व की प्रवृत्ति रूप श्रम में यदि उन्हें लाभ-अलाभ, सुख-दुःख, जीवन-मृत्यु, निन्दा-प्रशंसा या मान-अपमान जो कुछ भी होवे, सर्वत्र वह स्वयं उत्तरदायी है।

आचार्य हरिभद्रसूरि श्रमण की व्याख्या करते हुए कहा है कि 'नवि मुण्डिएण समणो। समयाए समणो होइ।' साधक केवल मुण्डित होने मात्र से श्रमण नहीं होता किन्तु श्रमण होता है समता की साधना से।

(२) **समन किसे कहते हैं**—समन का अर्थ है समताभाव।

समन शब्द सम शब्द से व्युत्पन्न है। 'सममणई तेण सो समणो' जो जगत के सर्व जीवों को तुल्य मानता है वह समन है।

सूत्रकतांग सूत्र में भगवन्त ने कहा है कि मुनि गोत्र, कुल आदि का मद न करे, दूसरों से घृणा न करे, किन्तु सम रहे[1] जो दूसरों का तिरस्कार करता है वह चिरकाल तक संसार में भ्रमण करता है, इसीलिए मुनि मद न करे किन्तु सम रहे।[2]

महत् पुरुषों की दृष्टि में राजा हो या रंक, सेठ हो या सेवक, मूर्ख हो या पण्डित, सभी समान होते हैं इसलिए ही चक्रवर्ती भी दीक्षित होने पर पूर्वदीक्षित अपने सेवक के सेवक को भी वन्दन करने में संकोच नहीं करता। किन्तु समत्व का आचरण करता है। समत्वयोगी विषय-कषायादि पर विजय प्राप्त करने में समर्थ होता है।

---

१ सूत्रकृतांग १/२/२/१

२ सूत्रकृतांग १/२/२/२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दशवैकालिकनिर्युक्तिकार ने कहा है कि जिसका मन सम होता है, वह समन है। जिसके लिये कोई भी जीव न द्वेषी होता है, न रागी, वह अपनी सम मनःस्थिति के कारण समन कहलाता है। वह सोचता है जैसे मुझे दुःख अप्रिय है उसी प्रकार सर्व जीवों को दुःख अप्रिय ही है। ऐसी समत्व दृष्टि से जो साधक किसी भी प्राणी को दुःख नहीं पहुँचाता वह अपनी समगति के कारण समन कहलाता है।[1]

इस प्रकार जो साधक अनासक्त होता है, काम-विरक्त होता है, हिंसा, झूठ, चोरी, मैथुन और परिग्रह की विकृतियों से रहित होता है, क्रोध, मान, माया, लोभ, राग-द्वेष इत्यादि जितने भी कर्मदान और आत्मा के पतन के हेतु हैं सबसे निवृत्त रहता है। इसी प्रकार जो इन्द्रियविजेता है, मोक्षमार्ग का पथिक है मोह ममत्व से पर है वह समन कहलाता है।

(३) **शमन किसे कहते हैं**—शमन का अर्थ है—अपनी वृत्तियों को शान्त रखना। वृत्तियाँ शुभ भी होती हैं और अशुभ भी। शुभ वृत्तियों से साधक का उत्थान होता है और अशुभ से पतन।

शमन का सम्बन्ध उपशम से भी है। जो छोटे-मोटे पापों का सर्वथा शमन करने वाला है, वह पाप का क्षय होने के कारण शमन कहलाता है।

शान्त पुरुष शम के द्वारा मंगल पुरुषार्थ का आचरण करते हैं। फलतः वे मुनि शम के द्वारा ही स्वर्ग में जाते हैं। इस प्रकार कई ऋषि-मुनियों ने शम को परम मोक्ष-साधन माना है।

श्रमण की दिनचर्या—

(१) **श्रमण**—सर्व दुःखों से मुक्त होने का प्रयत्न करे।

(२) **श्रमण**—पंच महाव्रतों को आत्महित के लिए विशुद्ध भाव से स्वीकार करे।

(३) **श्रमण**—विनय का प्रयोग आचार प्राप्ति हेतु या कर्म निर्जरा हेतु करे।

(४) **श्रमण**—केवल जीवनयापन के लिए भिक्षा ग्रहण करे।

(५) **श्रमण**—वस्त्र, पात्र या उपकरण का ग्रहण और उपयोग जीवननिर्वाह के लिए करे।

(६) **श्रमण**—उपसर्ग-परीषह आदि को कर्म निर्जरा हेतु धर्म समझकर सहन करे।

(७) **श्रमण**—चित्त निरोध के लिए, ज्ञानप्राप्ति के लिए, स्वात्मा में संलग्न रहने के लिये और दूसरों को धर्म में स्थित करने के लिए अध्ययन करे।

(८) **श्रमण**—तप और त्याग न तो सुख-सुविधा के लिए करे न तो परलोक की समृद्धि हेतु करे न तो अपने मान-सम्मान या प्रतिष्ठा के लिये करे किंतु केवल आत्म-शुद्धि के लिये करे।

(९) **श्रमण**—अनुत्तर गुणों की संप्राप्ति हेतु गुरु को समर्पित होकर गुरु की आज्ञा में मोक्षमार्ग की आराधना करता रहे।

(१०) **श्रमण**—हाथी जितना विस्तृत काय वाला हो या कुंथुवे जितना सूक्ष्म हो किन्तु सभी जीव जीना चाहते हैं, कोई भी मरना नहीं चाहता अतः श्रमण प्राणी-वध का वर्जन करे।

(११) **श्रमण**—असत्य सत्पुरुषों की दृष्टि में गर्हित है जिससे उभयलोक की हानि समझकर श्रमण उसका सर्वथा त्याग करे।

(१२) **श्रमण**—अब्रह्मचर्य अधर्म का मूल है, अनर्थ की खान है, अतः नरक में ले जाने वाले दुराचारों से श्रमण सर्वथा दूर रहे।

श्रमण और अहिंसा—

भगवान् महावीर ने कहा कि मेरी वाणी में

---

१ जइ मम न पियं दुक्खं जाणिय एमेव सव्व जीवाणं। न हणइ न हणावेइ य सममणइ तेण सो समणो॥

—दशवैकालिकनिर्युक्ति गा. १५४

साध्वीरत्न कुसुमवती अभिनन्दन ग्रन्थ
Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आस्था रखने वाला श्रमण छहों निकायों को अपनी आत्मा के समान माने। त्रस और स्थावर प्रत्येक जीवों की हिंसा से पर होवे। कीट, पतंग आदि जीव शरीर या उपकरणों पर चढ़ भी जाय तो श्रमण सावधानीपूर्वक उन्हें एकान्त में रखे। किन्तु त्रस जीवात्मा की किसी भी प्रकार से हिंसा न करे, न करावे, न करने वालों की अनुमोदना करे मनसा वाचा कर्मणा।

श्रमण न स्वयं असत्य बोले, न दूसरों को असत्य बोलने की प्रेरणा दे और न असत्य का अनुमोदन करे। क्रोध से या भय से अपने लिए या दूसरों के लिए झूठ न बोले। सत्य हो किन्तु प्रिय न हो तो भी न बोले किन्तु सत्य का प्रतिपक्षी बना रहे।

श्रमण ग्राम नगर या अरण्य आदि कहीं भी अल्प या बहुत, छोटी या बड़ी, सचित्त या अचित्त कोई भी वस्तु बिना दी हुई न ले, न दूसरों को प्रेरित करे और न अदत्त ग्रहण का अनुमोदन करे इतना ही नहीं तप, वय, रूप और आचार भाव की भी चोरी न करे किन्तु अचौर्य भाव में अनुरक्त रहे।

श्रमण देव, मनुष्य या तिर्यंच सम्बन्धी मैथुन का सेवन न स्वयं करे, न दूसरों को प्रेरित करे न मैथुन-सेवन का अनुमोदन करे किन्तु नववाड विशुद्ध ब्रह्मचर्य का पालन करे।

श्रमण किसी भी पदार्थ के प्रति फिर वह बड़ा हो या छोटा, अल्पमात्रा में हो या बहुमात्रा वाला हो, सचित्त हो या अचित्त ममत्व न रखे। न दूसरों को ममत्व रखने के लिए प्रेरित करे, न ममत्व का अनुमोदन करे तथा खाद्य पदार्थ का संग्रह न करे। वस्त्र, पात्र तो क्या इस शरीर पर भी ममत्व न रखे।

श्रमण ईर्या का संशोधन करता हुआ प्रकाशित मार्ग पर दया भाव से प्राणियों की रक्षा करने के लिए चार हाथ जमीन देखकर चले।

सोलह प्रकार की भाषा का परित्याग कर हित, मित और मधुर भाषा का प्रयोग करे।

वीर चर्या के द्वारा प्राप्त हुए और श्रावकों द्वारा भक्तिभावपूर्वक दिये गये निर्दोष आहार को यथोचित समय और मात्रा में ग्रहण करे।

श्रमण अपने उपकरणों को उपयोग से ले और रखे। तथा किसी प्रकार के जीवों को बाधा पीड़ा उपस्थित न होवे ऐसा स्थान को देखकर श्रमण मल-मूत्रादि त्यागे।

तथा श्रमण तीन गुप्तिओं से युक्त होवे—

(१) **मनगुप्ति**—राग-द्वेष की निवृत्ति या मन का संवरण।

(२) **वचनगुप्ति**—असत्य वचन आदि की निवृत्ति या वचन का मौन।

(३) **कायगुप्ति**–हिंसादि की निवृत्ति या कायिक संवरण।

इस प्रकार जैन श्रमण संस्कृति में श्रमण का अत्यन्त महत्व है। आध्यात्मिक विकास क्रम में उसका छठा गुणस्थान है। इसी प्रकार श्रमणोचित प्रक्रिया में यदि श्रमण निरन्तर साधना करता रहे तो क्रमशः ऊर्ध्वमुखी विकास करता हुआ अन्त में चौदहवें गुणस्थान तक पहुँचकर अजर-अमर सिद्ध, बुद्ध और मुक्त हो जाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org